© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

छायावाद की स्त्री-मुक्ति चेतना और महादेवी का साहित्य

पूनम कुमारी
शोधार्थी
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
का. दरभंगा, बिहार,भारत।

शोध आलेख सार– छायावादी कवियों ने आधुनिक नारी के जिस रूप की कल्पना की वह उस वर्तमान युग की होकर भी भविष्य की ज़्यादा थी। इसका एक प्रमाण यह है कि छायावादी कवि स्त्री के पत्नी-रूप को लगभग नहीं के बराबर चित्रित करते हैं। स्त्री का प्रेयसी और मुक्त रूप ही छायावादी काव्य का श्रेय है और उस तरह की उन्मुक्त प्रेम करने वाली नारी शिक्षा और चेतना के व्यापक प्रसार के बावजूद छायावाद के दौर में विरल थी। वह प्रेयसी-रूप भविष्य में ज़्यादा देखने को मिलता है। इस लिहाज से देखें तो छायावाद स्त्री-मुक्ति का काव्य भी दिखाई देता है जो अपने समय से आगे का काव्य था।

मुख्य शब्द– छायावादी, कवि, आधुनिक, स्त्री-मुक्ति, नारी शिक्षा, प्रेयसी,मुक्त।

छायावादी कविता को आलोचकों ने अनेक प्रकार से जाना, समझा और व्यक्त किया है। शुरुआत में इसे रहस्यवादी और निरी काल्पनिक कविताएं मानकर खारिज़ करने का भी प्रयास हुआ, किंतु छायावादी कविताओं में रचनाशीलता का एक ऐसा ताप था जिसके आगे इस तरह के विवाद सारहीन प्रतीत हुए। वास्तव में छायावादी कविता अन्य कविताओं की तरह अपने युग का प्रतिनिधि काव्य था। छायावाद का दौर राजनीति में मुख्यत: असहयोग आंदोलन से लेकर सविनय अवज्ञा तक का दौर है जिसे समझने के लिए मोटे तौर पर 1918 से 1936 तक बाँटा जाता है। इससे पहले हमने ऊपर देखा है कि इस दौर में समाज और देश किस तरह के परिवर्तन से गुज़र रहा था। इस दौर में स्त्री-अधिकारों को लेकर आमजन में आधुनिक चेतना विकसित हुई तथा अनेक ऐसे सुधार भी हुए जिसका सीधा प्रभाव स्त्रियों के जीवन पर पड़ा। विधवा-विवाह, बाल विवाह, बहुपत्नी प्रथा, सती प्रथा आदि अनेक कुरीतियां अब बहस के दायरे में आ गई थीं जिसे सभ्य समाज अपराध मानने को धीरे-धीरे राजी हो रहा था। किंतु सबसे ज़्यादा प्रभाव पड़ा शिक्षा का। अब स्त्रियां शिक्षित होने लगी थीं, अनेक मुद्दों पर अपनी राय बनाते हुए आंदोलनों में जाने लगी थीं, अपना भला-बुरा समझने लगी थीं तथा अपने भले के लिए खुल कर आवाज़ भी उठाने लगी थीं। अब वह अपनी भलाई के लिए पुरुषों पर निर्भर नहीं थीं। वह अब घर से बाहर निकलने भी लगी थीं और अपनी मर्ज़ी के लोगों से यथा-अवसर मिलने-जुलने भी लगी थीं। हिंदी साहित्य में इस बदलाव का असर हमें तब ज़्यादा समझ में आ सकता जब हम छायावाद से ठीक पहले के दौर (द्विवेदी युग) की कविताओं में अभिव्यक्त स्त्रियों के अथवा प्रेम के वर्णन की छायावादी कविताओं से तुलना करें।

छायावादी कविता स्त्री की देह को नज़रअंदाज़ नहीं करती और न ही उसके प्रति आकर्षण को, जिससे द्विवेदी युग का कवि हर तौर झिझकता है। छायावादी कवि स्त्री को उसी दैहिक छवि के रूप में देखता है जो छवि अनादि काल से पुरुषों को आकर्षित करती रही है, किंतु इसी के साथ-साथ अपनी कविताओं में वह शब्दों की सहायता से स्त्री की एक स्वप्निल छवि भी रचता है। बदलते नए युग के कारण ही जयशंकर प्रसाद ने नारी के आदर्श के रूप में 'कामायनी' में श्रद्धा को रचा जो रागात्मक वृति की प्रतीक है और मनुष्य को मंगल तथा श्रेय के मार्ग पर ले जाने वाली है। निराला भी स्त्री सौंदर्य के प्रचलित प्रतिमानों को तोड़ते हैं और पत्थर तोड़ने वाली मज़दूरनी को कविता की नायिका बनाकर लाते हैं। नामवर सिंह छायावादी काव्य में स्त्री के प्रति दृष्टिकोण के बारे में कहते हैं कि "छायावाद के पूर्ववर्ती काव्य में नारी संबंधी रचनाएं न हों ऐसा तो नहीं है, किंतु वे रचनाएं पुरुष प्रधानता की ही द्योतक हैं। द्विवेदी युग की कविता में नारी के प्रति दयाभाव तो है, पर यथोचित सम्मान का भाव नहीं है; उस युग में निस्संदेह विधवाओं को लेकर अनेक कविताएं लिखी गईं, लेकिन उन कविताओं में विधवा को खाना, कपड़ा दिलाने का ही आग्रह अधिक है और इसीलिए विधवा-विवाह को आवश्यक ठहराया गया। द्विवेदी युग का यह काव्य एक तरह से अनाथालय प्रतीत होता है, जिसमें नारी को आश्रय देने के साथ ही बंदिनी बना दिया गया और इस तरह वह अपने सहज जीवन से विच्छिन्न कर दी गई।[1]

किंतु धीरे-धीरे यह प्रवृति कम हुई तथा आगे चलकर छायावादी कविता में स्त्री को और प्रकारांतर से प्रेम को जो महत्व प्रदान किया गया वह अभूतपूर्व है। यही कारण है कि कई बार छायावादी कविता को प्रेम कविता या नारीवादी (स्त्रैण) कविता ही मान लिया जाता है। नामवर सिंह लिखते हैं कि "द्विवेदी-युगीन आर्यसमाजी नैतिकता का प्रभाव क्षीण हुआ और प्रकृति के बीच ही छायावादी कवि को नारी के नैसर्गिक रूप का दर्शन हुआ। यही वजह है कि त्रिपाठी जी का 'पथिक' भी आगे चलकर अपनी भूल महसूस करता है और प्रकृति से लौटकर पुन: अपनी पत्नी को स्वीकार करता है। पंत भी 'उच्छवास', 'आंसू' और 'ग्रंथि' की बालिका के साथ स्नेह-सूत्र से बंधते हैं और यहां तक कि 'भावी पत्नी' की कल्पना भी करने लगते हैं। वे अनुभव करते हैं कि प्रकृति से ही काम नहीं चल सकता; प्रकृति चाहे जितनी सुंदर और भाव-प्रवण हो, किंतु वह पूर्ण रूप से पुरुष के भावों को प्रतिध्वनित नहीं कर सकती – अथवा अधिक से अधिक उन भावों को प्रतिध्वनित ही कर सकती है। प्रतिध्वनि को ज्यों का त्यों लौटा देने के सिवा शून्य क्षितिज के पास और सामर्थ्य ही क्या है?"[2]

तात्पर्य यह कि छायावाद के आरंभ में कवि नारी को प्रकृति प्रेम में बाधक मान रहा था किंतु आगे चलकर वह कवि के ज़्यादा करीब हो गई और कवि प्रकृति में भी नारी को ही देखने लगा। यह बदलाव आकस्मिक या अनायास नहीं था बल्कि इसके पीछे समाज सुधार आंदोलन का बढ़ता प्रभाव था जो शुरु तो उन्नीसवीं सदी में ही हो गया था किंतु बीसवी सदी तक उसका असर व्यापक हो चुका था। परिणामस्वरुप स्त्री-शिक्षा का अभूतपूर्व प्रसार हुआ। आधुनिक शिक्षा ने लड़कियों को भी चेतना-संपन्न बनाया जिसका एक प्रभाव तो स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्रियों की बढ़ती भागीदारी में देखा जा सकता है। किंतु इस शिक्षा ने उनके मन में मुक्ति या स्वतंत्रता की चाह को व्यापक बनाया और वे अपने लिए समाज और परिवार में भी स्वतंत्रता पाने हेतु विचार करने लगीं। इसके अलावा अब स्त्रियां जीवन के व्यापक कार्य-क्षेत्र में भी नज़र आने लगीं, वे अनेक नौकरियों से जुड़ने लगीं

जो भारतीय समाज के लिए सर्वथा नई बात थी। इस मुक्त नारी में पुरुष ने अभिनव सौंदर्य पाया और नारी-मुक्ति में उसने अपनी मुक्ति भी महसूस की। इस प्रकार स्त्री-पुरुष संबंधो को लेकर परंपरागत धारणाएं ध्वस्त होने लगीं। इस सुधार आंदोलन की व्यापक चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। इन सभी बदलावों का प्रभाव कविता पर भी पड़ा और कविता में स्त्रियों के प्रति जो परंपरागत दृष्टिकोण था वह बदलने लगा। इस युग की समर्थ नारी ने पुरुष की दया या सहानुभूति से स्वयं को अलग करके अपने अधिकारों की बात उठाई। महादेवी वर्मा 'दीप-शिखा' की भूमिका में लिखती हैं कि "जहां तक नारी की स्थिति का प्रश्न है, वह आज इतनी संज्ञाहीन और पंगु नहीं कि पुरुष अकेले ही उसके भविष्य और गति के संबंध में निश्चय कर ले। हमारे राष्ट्रीय जागरण में उसका सहयोग महत्वपूर्ण और बलिदान असंख्य हैं। समाज में वह अपनी स्थिति के प्रति विशेष सजग और सतर्क हो चुकी है। साहित्य को कुछ ही वर्षों में उसकी सजीवता का जैसा परिचय मिल चुका है वह भी उपेक्षणीय नहीं है।"[3] इसी भूमिका में आगे चलकर महादेवी वर्मा यहां तक कहती हैं कि "भारतीय पुरुष जीवन में नारी का जितना ऋणी है उतना कृतज्ञ नहीं हो सका। अन्य क्षेत्रों के समान साहित्य में भी उसकी स्वभावगत संकीर्णता का परिचय मिलता रहा है।"[4]

प्रेम की इस भावना से केवल पुरुष ही हीं, स्त्रियां भी प्रभावित हुईं और अपने हृदय की प्रेम भावना को कविताओं में भी अभिव्यक्त किया। इस संदर्भ में नामवर सिंह लिखते हैं कि "महादेवी के गीतों में प्रेम की जो पीर व्यक्त हुई है वह सहृदयों से छिपी नहीं है। उनके लिए तो 'प्रिय से मादक पीर नहीं।' "[5]

प्रेम की चराचर में व्याप्ति और उसके अभाव में संसार के अस्तित्व पर भी प्रश्न खड़ा कर देना छायावादी कविता की एक विशिष्टता है। इन कविताओं में प्रकृति चित्रण प्राय: स्त्री रूप में या नायिका रूप में हुआ है। इसी संदर्भ में 'दीप-शिखा' की भूमिका में महादेवी वर्मा लिखती हैं कि "पिछले जागरण युग ने अपने पूर्ववर्ती युग से जो जीव पाया था उसे तो मानवी के स्थान में, सौंदर्य का ध्वस्त आविष्कार विभाग कहना उचित होगा। जाग्रत युग के आदर्शवादी कवि ने मलिनता में मिली पुरानी मूर्ति के समान उसे स्वच्छ और परिष्कृत करके ऊंचे सिंहासन पर प्रतिष्ठित तो कर दिया, परंतु वह उसे गतिशीलता देने में असमर्थ रहा। छायावाद युग ने उस कठोर अचलता से शाप मुक्ति देने के लिए नारी को प्रकृति के समान ही मूर्त और अमूर्त स्थिति दे डाली। उस स्थिति में सौंदर्य को एक रहस्यमयी सूक्ष्मता और विविधता प्राप्त हो जाना सहज हो गया, पर जीवन की यथार्थ सीमा रेखाएं धुंधली और अस्पष्ट होती गईं।"[6]

उपर्युक्त उद्धरण में देखा जा सकता है कि छायावादी कविता में नारी की बदलती स्थिति को महादेवी वर्मा भी उसी रूप में रेखांकित करती हैं जिस रूप में अन्य आलोचकों ने किया है। वे छायावादी कविता में नारी-चित्रण की मूर्तता और अमूर्तता को बदलाव तो मानती हैं किंतु उसे पर्याप्त नहीं मानतीं। वे इसी भूमिका में आगे लिखती हैं कि "आज के आदर्शवादी को उस सौंदर्य के स्वप्न और शक्ति के आदर्श को सजीव साकारता देनी होगी, अत: उसका कार्य व्यंजनों के आविष्कारक से अधिक महत्वपूर्ण और सूक्ष्मता के उपासक से अधिक कठिन है।"[7]

छायावादी कविता की प्रेमानुभूति के बारे में नामवर सिंह लिखते हैं कि “छायावादी कविता में प्रणय का जो आवेगपूर्ण तथा प्रगाढ़ रूप मिलता है वह अनूठा है। इसका मुख्य कारण यह है कि छायावादी प्रणय-भावना स्त्री और पुरुष दोनों के पारस्परिक मानस-द्वंद्व का परिणाम है। इस युग में स्त्री-स्वातंत्र्य के कारण दोनों पक्षों को मुक्त हृदय से भाव-विनिमय तथा साहचर्य स्थापित करने का अवसर प्राप्त हुआ। इससे प्रेम के पूर्ण विकास तथा उन्मुक्त अभिव्यक्ति के लिए द्वार खुल गया। एक ही कोटि की दो स्वतंत्र सत्ताओं के योग से प्रेम का अधिक गूढ़ और समृद्ध होना स्वाभाविक है।”[8]

छायावाद को सारी कल्पना-प्रवणता और रहस्य भावना के बावजूद शक्ति, जागरण और लोकमंगल का काव्य माना जाता है। छायावादी कविता में सामाजिकता और वैयक्तिकता, दोनों की ही प्रधानता है और दोनों ही स्तरों पर वह नारी-चेतना को नए रूप में अभिव्यक्त करती है। छायावादी कविता पढ़ने के बाद यही समझ में आता है कि इस दौर के कवियों ने नारी को मुख्य रूप से दो रूपों में अभिव्यक्त किया है। एक तो उसका भौतिक अथवा दैहिक रूप है जो स्वाभावत: हमेशा से पुरुष को आकृष्ट करता रहा है। इस रूप में छायावादी कवियों ने नारी को अपनी कल्पना के अनुसार स्वप्निल और दैवी बना दिया है जिसे अपने आसपास की नारियों में पहचानना अत्यंत दुष्कर हो जाता है। इसके अलावा छायावादी कविता में नारी का दूसरा रूप लौकिक है, जिसे कवि महसूस करता है कि वह अनेक प्रकार के बंधनों में जकड़ी हुई है और जिसे वह अपनी कविता के माध्यम से बंधनमुक्त करना चाहता है। इस रूप में छायावाद ने नारी को मानवीय सहृदयता के साथ अंकित किया है। पंत की तो एक अत्यंत प्रसिद्ध पंक्ति ही है- ‘देवि मां सहचरि प्राण!’ इसी प्रकार प्रसाद ने नारी को आदर्श श्रद्धा के रूप में देखा जो रागात्मक वृत्ति की प्रतीक है तथा मनुष्य को मंगल और श्रेय के पथ पर ले जाने वाली है। इसी प्रकार निराला विधवा को ‘ईष्ट देव के मंदिर की पूजा’ बताते हैं। इसके अलावा निराला ने अपनी कविता में इलाहाबाद के मार्ग पर पत्थर तोड़ने वाली मज़दूरनी तथा तुलसीदास की पत्नी रत्नावली का भी चित्रण किया है जो तत्कालीन कविताओं में व्यक्त हो रही नारी से सर्वथा भिन्न है। इस प्रकार छायावादी युग तक आते-आते हिंदी कविता में स्त्री के प्रति प्रेम और संवेदना का गरिमापूर्ण विकास देखने को मिलता है।

इस संदर्भ में नामवर सिंह लिखते हैं कि “छायावाद की इस नवीन प्रणय भावना ने प्रेम के आलम्बन – सौंदर्य का मानदंड ही बदल दिया। जिस प्रणय संबंध में भाव की प्रधानता हो, उसमें स्थूल अंग यष्टि को महत्व मिलना असंभव है। भावावेग में मनुष्य साक्षात रूप को भी अपनी कल्पना से रंग लेता है और प्रत्यक्ष रूप में भी किसी परोक्ष सौंदर्य के दर्शन करता है। छायावादी कवि ने नारी की पुन: सृष्टि की। उसने विधाता की सृष्टि को अपनी कल्पना के योग से नवीन रूप दे डाला, इस तरह छायावादी कवि की नारी विधाता की सृष्टि से कहीं अधिक कवि सृष्टि है। इसलिए छायावादी नारी आधी मानवी है आधी कल्पना।”[9]

आलोचकों ने बार-बार इस बात पर बल दिया है कि छायावादी कविता में नारी का जो चरित्र उभर कर आता है वह न केवल अपने पूर्ववर्ती समय से अलग है बल्कि अद्‌भुत भी है। और नारी को इस रूप में छायावादी कवियों ने केवल युगीन प्रभाव के वशीभूत होकर नहीं गढ़ा है, उसमें उनकी रहस्यवादी कल्पना का भी बराबर का योगदान है। यही कारण है कि प्रसाद की श्रद्धा, पंत की अप्सरा और निराला की रत्नावली के आगे पूर्ववर्ती

युग की सभी काव्य-नायिकाएं फीकी दिखाई पड़ती हैं, यहां तक कि सूर की राधा, जायसी की पद्मावती, तुलसी की सीता और अन्य रीतिकालीन नायिकाएं भी। इसके कारणों की पड़ताल करते हुए नामवर सिंह कहते हैं कि "वस्तुत: आधुनिक नारी ने अपनी शक्ति का ऐसा परिचय दिया कि पुरुष के लिए वह रहस्यमयी शक्ति प्रतीत होने लगी, पुरुष उसकी शक्ति से इतना अभिभूत हो उठा कि उसके बाह्य-रूप की सीमा को भूलकर उसमें किसी अतीन्द्रिय सौंदर्य का अनुभव करने लगा। आधुनिक नारी ने पुरुष की संस्कार-बद्ध वासना को ऐसा धक्का दिया कि उसकी आंखों में बसी हुई प्राचीन नारी-प्रतिमा चूर-चूर हो गई और उसके स्थान पर एक दिव्य रमणी मूर्ति प्रतिष्ठित हो गई। निराला के तुलसीदास का कामातुर रूप देखकर रत्नावली में ऐसी ही आधुनिक नारी जाग उठी : 'जागी जोगिनी अरूप-लग्न / वह खड़ी शीर्ण प्रिय-भाव-मग्न निरुपमिता।' और अपने इस विराट रूप में जब रत्नावली ने तुलसीदास को धिक्कारा, तो कवि की आंखों में नारी का और ही रूप सजीव हो उठा : 'देखा, शारदा नील-वसना / हैं सम्मुख स्वयं सृष्टि रशना, / जीवन-समीर शुचि-नि:श्वसना, वरदात्री।' स्पष्ट ही यह अनुभूति आधुनिक तुलसीदास की है, प्राचीन की नहीं।"[10]

इस प्रकार देखा जा सकता है कि छायावादी कवियों ने आधुनिक नारी के जिस रूप की कल्पना की वह उस वर्तमान युग की होकर भी भविष्य की ज़्यादा थी। इसका एक प्रमाण यह है कि छायावादी कवि स्त्री के पत्नी-रूप को लगभग नहीं के बराबर चित्रित करते हैं। स्त्री का प्रेयसी और मुक्त रूप ही छायावादी काव्य का श्रेय है और उस तरह की उन्मुक्त प्रेम करने वाली नारी शिक्षा और चेतना के व्यापक प्रसार के बावजूद छायावाद के दौर में विरल थी। वह प्रेयसी-रूप भविष्य में ज़्यादा देखने को मिलता है। इस लिहाज से देखें तो छायावाद स्त्री-मुक्ति का काव्य भी दिखाई देता है जो अपने समय से आगे का काव्य था।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. छायावाद- नामवर सिंह, पृ. 47
2. वही, पृ. 47-48
3. महादेवी वर्मा का काव्य संग्रह 'दीप-शिखा' की भूमिका 'चिन्तन के कुछ क्षण' से उद्धृत
4. छायावाद- नामवर सिंह, पृ. 56
5. महादेवी वर्मा का काव्य संग्रह 'दीप-शिखा' की भूमिका 'चिन्तन के कुछ क्षण' से उद्धृत
6. वही, पृ. 57-58
7. छायावाद – नामवर सिंह, पृ. 64
8. वही, 66